

000000 000000

जनसत्ता 16 मई, 2014 : असम के जातीय हिसा पर कोई सार्थक बातचीत या चर्चा शुरू करने का खतरा यह है कि

कहीं आप अल्पसंख्यकवरोधी क़ार न दे दें जायें वह भी उस वक़्त जब असम में जातीय हिसा में लोगों के मरने का सलिसला साल दर साल बढ़ता गया है। ताजा हिसा इत्तफ़िक से मोदी के उस दौर के तुरंत बाद शुरू हुई, जिसमें उन्होंने घुसपैठियों के देश से निकल बाहर करने का वविदास्पद बयान दिया। इस हिसा में चालीस से ज्यादा लोग मारे जा चुके हैं और हजारों लोग शरणार्थी शिविरों में पनाह लाए हुए हैं। मारे जाने वालों में बड़ी संख्या बच्चे और औरतों की है। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की तरफ से दौरा किया जा चुका है। राहत शिविरों में दौरों के दौरान बताया गया कि बोडो पीपुल्स फ्रंट समर्थित उग्रवादियों ने ये हमले किए।

सरकार स्थिति के नयित्रण में बता रही है। मगर इस तरह की शांति के बाद भी वहां हिसा की घटना होती रही हैं। दो साल पहले हुई जातीय हिसा में चौहत्तर से अधिक लोग मारे गए थे। साढ़े चार लाख से ऊपर औरत-मर्द-बच्चे राहत शिविरों में खौफ के साह में जीने को मजबूर हुए। अभी उन राहत शिविरों में रहने वाले लोग पूरी तरह अपने घर वापस भी नहीं गए। कि हिसा का यह ताजा दौर शुरू हो गया। इसका नदिान दूं ना जरूरी है। इसकी पहली शर्त है कि आप इसे सांप्रदायिकता के चश्मे से न देखें।

भाजपा इस पूरे प्रकरण के सांप्रदायिक रंग देती रही है। इस लहिाज से मोदी और आडवाणी में कोई खास फ़क नहीं है। इस बार घुसपैठियों के खिलाफ मोदी का शंखनाद हुआ। पछिली बार आडवाणी का बयान आया था कि समस्या के मूल में बांग्लादेशी मुसलमान हैं, जो अवैध तरीके से उस इलाके में प्रवेश कर गए हैं। चुनाव आयुक्त हरशंकर ब्रह्मा ने इंडियन एक्सप्रेस में पछिले साल 28 अगस्त के प्रकाशित अपने लेख 'हाउ टु शेयर असम' में कहा था कि साठ के दशक के अंतमि वर्षों और सत्तर के दशक के शुरुआती वर्षों के बीच इस इलाके में प्रवासी बांग्लादेशियों के प्रवेश से हालात बगिरे हैं। इस बहस के अगले दिन दलिली के कसेशन जज ने डक्ती के कामामले में दो बांग्लादेशी अभियुक्तों के सजा सुनाते हुए कहा कि इस देश में क्रीब तीन करोड़ बांग्लादेशी राष्ट्रियता वाले लोग हैं, जो यहां की सुवधाओं का उपभोग कर रहे हैं, जबकि यहां के संसाधनों पर पहला हक भारतीय नागरिकों का है। केंद्र सरकार उन्हें चहिनति कर बाहर निकलने में वफिल रही है। यानी कुल मलिाकर ठीका उन्हीं लोगों के सरि पर फ़ैला जाता है, जो जातीय हिसा के शकिर होते हैं।

हालांकि इसके पहले आठ अगस्त के 'द हदिू' में प्रकाशित अपने लेख में बनजीत हुसैन ने इस तथ्य के चुनौती देते हुए कहा था कि असम में मुसलमानों का प्रवेश आजादी के पहले ही हो चुका था। पश्चिमि बंगाल से असम में प्रवेश करने वाले मुसलमान उस वक़्त अवभाजति जिला गोआलपा में बसे, जो अस्सी के दशक तक चार जिलों- केकाझार, बोंगईगांव, चरिंग और दुबरी- में बंट गया।

यह बात दावे से नहीं कही जा सकती कि असम में बसे सारे मुसलमान बांग्लादेश बनने और उसके बाद हुए युद्ध के दौरान वहां से भाग कर आए। फिर इस तथ्य से भी स्थिति में कोई खास फर्क नहीं पड़ता कि मुसलमान बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में या सत्तर के दशक में असम पहुंचे। दरअसल, जैसे-जैसे जीवन यापन के साधन कम होते गए, जमीन और रोजगार की क्लिप्त बनी लगी, असम में जातीय-नस्ली हिंसा और दंगे-फसाद भी कने लगे। कभी बोडो मूलवासी मुसलमानों से टकराते हैं, तो कभी झारखंड से गए आदिवासियों से। उस इलाके में सदियों से बसे अन्य आदिवासी समुदायों के बीच भी तकरार होती रहती है। इसलिये इसे सांप्रदायिकि नजर से देखना कबुनयादी भूल होगी।

मगर राजनीतिक दलों के नेता लगातार ऐसा ही करते रहे हैं, क्योंकि उनकी समझ और साजिश यह है कि क्षेत्रीय असंतोष से उपजे जातीय ध्रुवीकरण के सांप्रदायिकि रंग देकर वे अपने अपने-तरीके से वोट की राजनीति कर सकते हैं।

दरअसल, संपूर्ण जनजातीय क्षेत्र ही आज कबेचैनी से गुजर रहा है। असम में अगर नगा वदिरोही सक्रिय है, तो पूर्व, मध्य और दक्षिणी प्रदेशों में माओवादी हमें गहराई से उन कारणों पर विचार करना चाहिए कि आदिवासी समाज के असंतोष की वजह क्या है, क्योंकि समाधान यहीं से निकलेगा। भारत के किसी भी हिस्से के जंगलों, पर्वतीय अंचलों में चले जाइए, अपनी नीरवता में जीते किसी न किसी आदिवासी समुदाय के लोग आपको मलि जांगे। ये कम से कम दो सौ कस्मि की भाषा बोलते हैं। इनके रूप-रंग में भी भिन्नता है। कुछ मलय मूल से मलिते-जुलते हैं, कुछ चीनी मूल के लोगों से। इनके बारे में आज हमारे पास पहले से ज्यादा जानकारी है, लेकिन आज भी वे कंधुंध में लपिटे नजर आते हैं। इसीलिये देश की राजधानी में पहुंचे इस क्षेत्र के लोगों के बहुधा वदिशी ही समझ लिया जाता है।

इन जनजातीय समुदायों में बोडो असम के सबसे पुराने बाशिंदे हैं। इतिहासकारों के अनुसार, सदियों पहले तबिबत होते हुए ये ब्रह्मपुत्र घाटी में पहुंचे और पूर्वी हिमालय के संपूर्ण तराई क्षेत्र- असम, त्रिपुरा, उत्तरी बंगाल और आज के बांग्लादेश के कुछ हिस्सों- में बस गए। ये तबिबत-बर्मी भाषा परिवार की कभाषा बोलते हैं। ये नमिस्ति परंपरा के लोग थे, लेकिन अब हद्दी है। उसी तरह जैसे झारखंड के आदिवासी भी हद्दी बता जाते हैं। इनके पास अपनी लपिथी, जो संरक्षण के अभाव में खत्म हो गई। शुरु में इन्होंने लैटिन और बंगाली लिपि के अपनाया। अब देवनागरी में लिखते हैं। इसी समुदाय ने अपने इलाके में धान के खेत तैयार किए, चाय के बगान लगाए, लेकिन उतना ही जतिने की उनके जरूरत थी।

इसके अलावा, ये रेशम पैदा करने वाला की। पालते हैं। हर घर में ककघा जरूर होता है। अपना बुना कपड़ा पहनते हैं। बांस के सामान बनाते हैं। पहाड़ी अंचलों में जीवन कठिन होता है। ऊंचे-नीचे रास्तों से होकर रूंधन के लिये लकी जुटाना, ढलानों पर खेती, जंगल पर निर्भरता, सामूहिक श्रम और आनंद वाली संस्कृति। लेकिन हमारी राजनीति और अदूरदर्शिता ने इस सीधी-सादी जनजाति के हिस्से वदिरोही में बदल दिया है।

आवागमन की सुविधा बने के साथ इस क्षेत्र में बहरिगतों का प्रवेश हुआ। आजादी के बाद प्रखंड इकाई तक सरकारी कार्यालय बने। विकास के साथ सुदूर इलाकों में सरकारी अमले, अधिकारी, अभियंता, ओवरसीयर, ठेकेदार, जमादार आदि भी पहुंचे। बहरिगतों की संख्या बनी गयी। दुकानें, बाजार पसरते गए। इसके अलावा रोजगार की तलाश में पहुंचे अन्य इलाकों के लोगों से आबादी का संतुलन बगिने लगा। तथाकथित विकास के साथ लपिटी बीमारियां तो पसरती गईं, लेकिन यहां के लोगों के विकास का लाभ नहीं मलि। शैक्षणिक संस्थानों में बोडो छात्रों की संख्या गनिती की होती थी। सरकारी नौकरियों में आरक्षण पद भी खाली रह जाते। परिणाम यह कि क्षेत्रीय असंतोष भी कने लगा।

बांग्लादेश के मुक्ति संग्राम के दिनों में भारी संख्या में बांग्लादेशी मुसलमानों का इस क्षेत्र में प्रवेश हुआ। सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार, कम से कम तीन करोड़ बांग्लादेशी मुसलमान आज देश में हैं। इसका बड़ा हिस्सा पूर्वोत्तर राज्यों में समिटा हुआ है। हम बांग्लादेशी मुसलमानों के इन सबके लिये दोषी

नहीं ठहरा सकते। वे इतिहास और समय के मारे लोग हैं। उनमें से बहुसंख्यक कभी दलित-पछि। हट्टू ही थे, जो अगली जातियों के उत्पीड़न का शक्ति होकर मुसलमान बन गए। उनमें से अधिकांश बुनकर थे, जो इंग्लैंड में हुई औद्योगिक क्रांति से तबाह हो गए। लंकाशायर के कर्मियों के बाजार के लिए उन्हें बर्बाद कर दिया गया। देश का विभाजन हुआ और वे दर-बंदर हो गए। बांग्लादेश के गठन के वक्त कब्र पर उन पर गाज गरी और वे भारी संख्या में शरणार्थी बन कर भारत में चले आए, जो कभी उनका भी देश था। उनमें से अधिकांश अब भारत में रहते हैं।

पूर्वोत्तर की जनजातीय आबादी के इस सबका खमियाजा भुगतना पड़ा। 1980 में उपेंद्रनाथ ब्रह्मा के नेतृत्व में बोडो आंदोलन शुरू हुआ। कदशक लंबे संघर्ष के बाद बोडोलैंड क्षेत्रीय परिषद का गठन हुआ। लेकिन हकीकत यह है कि इस सबके बावजूद बोडो आबादी का अनुपात कम होता जा रहा है। उनकी जमीन उनसे छिनती जा रही है। उनकी संस्कृति, जातीय अस्मिता मटिती जा रही है। हट्टू धर्म से उनका कोई वास्ता नहीं था। लेकिन आज ऐनमिस्ट परषिटी से पूजा-पाठ करने वाले लोग वहां गनिती के रह गए हैं। सबसे बड़ी बात यह कि उनमें महाजनी व्यवस्था में जीने की बुद्धिमत्ता नहीं। इसलिये वे पछि जा रहे हैं।

हमारे लोकतंत्र और संसदीय प्रणाली का मूलधार संख्याबल है। अब जब उनकी आबादी का अनुपात घटता जा रहा है, धीरे-धीरे मताधिकार पर आधारित लोकतांत्रिक व्यवस्था ही उनके लिए बेमतलब बन कर रह जाने वाली है। यही असुरक्षा की भावना, अस्तित्व मटिने का भय, जब-तब हसिक करवाइयों के रूप में प्रगट होते हैं।

जसि तरह झारखंड और उससे सटे इलाकों में समाजवादियों, कम्युनिस्टों और चौहत्तर आंदोलनों से निकले सामाजिक राजनीतिक कार्यकर्ताओं की सक्रियता रही है और लोकतांत्रिक व्यवस्था के तहत संघर्ष की कपरंपरा बनी, वैसे सुदूर पूर्वोत्तर में नहीं हो सका। इस वजह से अलग झारखंड राज्य का आंदोलन कमोबेश शांतपूरण तरीके से चला। हसि की घटना कभी-कभार ही हुई, जबकि बोडो क्षेत्र में वहां के आदवासियों के संघर्ष की उपलब्धि कम और हसि कहीं ज्यादा रही।

साठ के दशक में जेपी की अगुआई में नगा समस्या के हल की दसिा में कुछ सार्थक बातचीत शुरू हुई थी। लेकिन वह प्रक्रिया बहुत दूर तक नहीं चली। दलित्ती के हुक्मरानों ने फौजी तरीके से हल निकलने के वकिल्लप में रुचि ली। इसका परिणाम यह हुआ कि उस इलाके में जनवादी आंदोलन भी हसिस् तरीके से चला। क्या हमने कभी इस बात पर वचिार किया कि शरणार्थियों का बोझ सरिफ असम क्यों उठा ? क्या शरणार्थियों के देश के अलग-अलग हसिस्सों में नहीं बसाया जा सकता ?

हमारे बहुत-से बुद्धिजीवियों के इस बात से आश्चर्य होता है कि आजाद भारत में आप किसी के देश के किसी हसिस्से में जाने और बसने से कैसे रोक सकते हैं ? लेकिन कोई न कोई हद तो मुकर्रर करनी ही पड़ीगी। क्या आप आक्रामक और वकिल्लसि सभ्यता-संस्कृति के अवकिल्लसि और भिन्न सभ्यता-संस्कृति के लील जाने की छूट देंगे ? इतिहास में यह सब होता रहा है। लेकिन लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी क्या 'सर्वाइवल ऑफ द फिटिस्ट' का ही सिदिधांत चलेगा ? अगर समय रहते हम इन सवालों का हल नहीं ढूँते, इस व्यवस्था के सही अर्थों में समतामूलक और न्यायपूरण नहीं बनाते, तो स्थिति दिनोंदिन और गंभीर होती जागी।

फेसबुक पेज को लाइक करने के लिए क्लिक करें- <https://www.facebook.com/Jansatta>

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लिए क्लिक करें- <https://twitter.com/Jansatta>